सदीनामा

सोच में इज़ाफा www.sadinama.in ISSN : 2454-2121

वर्ष-19 ❍ अंक-5 ❍1 से 31 मार्च 2019❍ पृष्ठ-28 ❍ R.N.I. No. WBHIND/2000/1974 ❍मूल्य - 10 रूपये

Live: IAF jets crossed LoC, dropped 1,000kg bombs on terror camps, sources say

शौर्य-शहादत और नया हिन्दुस्तान

सम्पादकीय

सोशल मीडिया : संभावनाएं और सीमाएं

भारतीय भाषा परिषद, कोलकाता ने दो दिवसीय ''साहित्यिक पत्रिका सम्मेलन, 16-17 फरवरी 2019'' को आयोजित किया। विभिन्न गंभीर सत्रों, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता : देश दुनिया का परिदृश्य, लघु पत्रिकाओं के समक्ष वर्तमान चुनौतियाँ, ई-साहित्यिक पत्रिकाओं की दशा और दिशा, साहित्यिक पत्रिकाओं का भविष्य, पढ़ने की संस्कृतिक : पाठक कहाँ हैं? इस आयोजन में देश भर से पचास से अधिक सम्पादक-लेखक इकट्ठे हुए इन्हीं के साथ कोलकाता के साहित्यिक जगत ने भी अपनी बड़ी उपस्थिति दर्ज की। इन्हीं सत्रों में एक सत्र था सोशल मीडिया : संभावनाएँ और सीमाएं। इस सत्र के अध्यक्ष थे, कथादेश पत्रिका के सम्पादक हरिनारायण, वक्तागण थे, अनुज (सम्पादक-कथानक, कथाकार), गोविन्द माथुर (कवि, जयपुर, नवीन कुमार नैथानी (कथाकार, देहरादून) तथा मुख्य वक्ता थे मीमांसा पत्रिका के सम्पादक, आलोचक राजा राम भादू (जयपुर)। इस सत्र का संचालन किया जितेन्द्र जितांशु यानि मैंने। इस संचालन के क्रम में कई बिन्दुओं पर बातें करूँ तो यही लगता है कि खाली 'खाली स्मार्ट फोन खरीदे से ना होई, स्मार्ट बने के परी' स्मार्ट बनने का मतलब आसपास के परिवर्तनों के सापेक्ष खुद को और अपने माध्यमों को ढालने की ओर बढ़ना है।

मेरी भाभी जी जब ब्रजभाषा में कहती है कि ''लला फोटू भेजो ए नेक देख लिओ'' – यानि कि मोबाइल पर फोटो भेजा है थोड़ा देख लेना। तब सोशल मीडिया की मारकता, प्रसार और समझ में आता है। यह सोशल मीडिया की जो नई तकनीक आई है हर जगह उपस्थित है। यह तकनीक निरपेक्ष है। संवाद से सीधी जुड़ी है। तारविहीन है, सहज पे जाने लायक है और किताब से भी छोटी है। पुरानी चीजों को थोड़ा खिसकाकर नई चीजें जगह बनाती हैं। आज कोलकाता में ट्राम चल रही है और मेट्रो रेल । हमें (पुरानी चीजों से मोह है पर हर जगह ऐसा हो जरूरी नहीं, बम्बई को हीलें जब मंटो कहानी 'लाइसेंस' लिख रहे थे तब मुम्बई में तांगा चलता था आज मुम्बई के उपनगरों तक में इक्का नहीं है। सोशल मीडिया के स्वरूप अंतरक्रियाएँ और साहित्य के व्यापक फलक के लिए इसे समझा जाना जरूरी है।

जब प्रिंट आया, छपे अक्षर आए उर्दू की कलात्मक कैलियोग्राफी पर अगर पड़ने लगा तो अकबर इलाहाबादी ने कहा -

''पानी पीना पड़ रहा है, पाइप का, अक्षर पढ़ना पड़ रहा है टाइप का।''

उसके बाद आया रेडियो, सड़कों के किनारे, खेतों में रेडियो, रेडियो ही रेडियो और अब डिजिटल और इंटरनेट रेडियो। रेडियों से सिर्फ सुनाई देता था अब आया दिखने-सुनने दोनों की तकनीक वाला 'टेलीविजन' पहले ब्लैक एण्ड व्हाइट फिर रंगीन आया। प्रिंट और रेडियो दोनों, जायेंगे पर ऐसा नहीं हुआ हाँ प्रिंट और रेडियो दोनों ने अपने आपको बदला 'हार्डवेयर' भी 'साफ्टवेयर' भी। अब इस फील्ड में नये पहलवान का उदय हुआ है सोशल मीडिया। पुराने संचार माध्यमों से अलग इसकी क्षमता इसको बहुआयामी आकर्षक, अंतरंग (निजी), सर्वव्यापी, सर्वसमयात्मक, सर्वत्र और सस्ता और सर्वसुलभ बनाती है। अब जब कम्पनियाँ सामाजिक संस्थाएँ, आर्थिक, शैक्षिक, राजनैतिक नीति निर्माता, समाज के तमाम समूह इसकी तरफ दौड़ रहें हैं तो साहित्य जगत ही पीछे क्यों रहे? पिछले कुछ सालों से सोशल मीडिया में कई आन्दोलन जन्में और जनआंदोलन में बदल गए। भारत के सन्दर्भों का देखें तो India Against Corruption, 'निर्भया कांड' जिसके कारण युवा सड़कों पर आ गए और दबाव में सरकार को ज्यादा प्रभाव कानून बनाना पड़ा और अंत में Metoo.

जहाँ तक हिन्दी जगत की आंतरिक ताकत और प्रगतिशीलता का सवाल है, हम इंटरनेट पर 'ब्लाग' से चले, कुछ बेबसाइटें बनीं, सोशल मीडिया, के प्रिंट, विडियो, आडियो चैट, लाइक्स, इमोजी तक हम बाद में आये। सिर्फ फेसबुक ही सोशल मीडिया नहीं है,व्हाट्सअप, लिंकडिन, ट्विटर, टम्बलर, इंस्टाग्राम, भी उपस्थित हैं। क्योरा का जिक्र भी चलते चलते कर दूं।

अब मामला यहाँ प्रयोग हो रही भाषा की सुचिता और स्वच्छंदता का सवाल है तो हमें मिलकर इन मुद्दों पर काम करना

सम्पादकीय

पड़ेगा।

बात लघु पत्रिका आंदोलन की करें यह भी जरूरी है। साठ और सत्तर के दशक में उभरे हिन्दी लघु पत्रिकाओं के विविध-विशद संसार को एक संस्थान के रूप में सांस्कृतिक आंदोलन का रूप देने की कोशिश नब्बे के दशक में की गई। खास बात यह भी कि यह पहल कम्युनिस्ट पार्टियों के नेतृत्व में चलने वाले लेखक संगठनों में, अलग तरह की थी। दूसरे, उस समय तक सांस्कृतिक आंदोलन के लिए जरखेज समझी जाने वाली साहित्य की जमीन बदली हुई राजनीतिक-सामाजिक परिस्थितियों में नई परिभाषाओं की मांग कर रही थी। चुनौतियों का स्वरूप पहले जैसा नहीं रह गया था। विचारधारा, प्रतिबद्धता प्रतिरोध, समाज-रचना, व्यावसायिकता और रचनाशीलता जैसे प्रत्यय संशोधन की मांग कर रहे थे। (लघुपत्रिका आंदोलन : संरचना और सरोकार, राजीव रंजन गिरि।)

लघुपत्रिकाओं का पहला सम्मेलन कोलकाता में हुआ और अब 2019 में भी।

इस आंदोलन से जुड़े बहुत सारे लोग इस सम्मेलन में भी उपस्थित थे। इस माध्यम की तमाम बेहतरीन चीजों की पड़ताल करके इसमें हमें अपने आदर्शों के अनुरूप तथ्य खोजने और नई रणनीति बनाने की जरूरत है।

जीतेन्द्र जितांशु

jjitanshu@yahoo.com

ADVERTISEMENT RATE TARIFF

Advertisement Space	Rate
Back Cover Page (Colour)	: 12,000/-
Back Cover Page (Black & White)	: 10,000/-
Inside Cover Page	: 8,000/-
Black & White Advertisements (Half Page)	: 6,000/-
Coloured Advertisements (1/4 Page)	: 5,000/-
Black & White Advertisements (1/4 Page)	: 2,500/-
Bottom Strips (15cm × 5cm)	: 1,000/-
Front Cover Page (Only colour)	: 25,000/-

पत्रिका का ताना-बाना

संपादक :

जीतेन्द्र जितांशु

9231845289

सम्पादकीय सलाहकार

यदुनाथ सेउटा

उप-सम्पादक

तितिक्षा

मिनाक्षी सांगानेरिया

संरक्षक मंडल :

आरती चक्रवर्ती

एच॰ विश्ववाणी

शिवेन्द्र मिश्र

राजेन्द्र कुमार रुइयां (अमेरिका)

डीटीपी, लेआउट तथा भूल-सुधार

राजेश्वर राय

रमेश कुमार कुम्हार

मारिया शमीम

कवर पेज कलर का चुनाव :

उषा सिंह, दिल्ली

पत्राचार का पता :

संपादक - सदीनामा

Purboyan, Ground Floor
38E, Prince Bakhtiar Sah Road
Kolkata - 700 033

West Bengal

E-Mail : sadinama2000@gmail.com

www.sadinama.in

कविता

महेश चन्द्र पुनेठा की कविताएँ

999 दिन के अनशन के चलते दम तोड़ चुके जी.डी. अग्रवाल को समर्पित

कुछ लोग कविता लिखते हैं
कुछ लोग कविता कहते हैं,
मगर मैं
कुछ ऐसे लोगों को जानता हूँ
जो न कविता लिखते हैं
और न कविता कहते हैं
लेकिन वे कविता को जीते हैं
मैं उन्हें ही असली कवि मानता हूँ।

बहता जल
कब मानता है
किसी भी बंधन को
बंध जाए जो
फिर वो
जल कहाँ रह जाता है?
पीना तो दूर
उससे नहाया भी नहीं जा सकता है।

सानंद! अगर आपने अपने लिए माँगा होगा
दे देते वे सानंद
बना लेते आपको अपना साझीदार
मगर आप मांगते रहे दूसरों के लिए
आप आने वाली पीढ़ियों की चिंता में
खड़े हो गए उनकी पेटियों के रास्ते में
उनका लालच और आपके प्राण
खड़े हो गए सामने-सामने
ऐसे में वही होना था सानंद
जो हो चुका था निगमानंद के साथ
आपको सब पता था
आप शहीद हो गए
इस आशा में कि
जो नहीं कर पाया आपका अनशन
कर जाएगा आपका मरण
पर यह तरीका
उन्हीं पर लागू होता है
जिसके पास नाक होती है
क्या आपको लगता है कि
पेटियों के सामने
नाक रगड़ने वालों के पास
नाक जैसा कोई अंग भी हो सकता है ?

डरो... डरो... डरो...
सहमे रहो
सिकुड़े रहो
घर के भीतर बैठे रहो
मगर किसी से मत कहो
कि तुम्हें डर लग रहा है
डर की बात करना
दरअसल राष्ट्रद्रोह करना है।

चारों ओर से जब
कोशिश की जा रही हो झुकाने की
सलाह दी जा रही हो झुकने की
और लोग रेंगने की लिए तैयार हों
ऐसे में
गर्दन न झुकाने की
डॉक्टरी सलाह भी
मन को थोड़ी देर की तसल्ली दे जाती है
जबकि पता है
गर्दन न झुकाने से
रूक जायेंगे बहुत सारे जरूरी काम
पर स्वास्थ्य के लिए
जरूरी है इस सलाह पर अमल।

दूध के अलावा जिसका
गोबर और मूत्र भी
माना जाता है शुद्ध ।
जो गौग्राम, गोदान
वैतरणी से है आबद्ध।
जिसके जीवन से ज्यादा
हो चली है मौत बड़ी
फिर भी क्यों वह
गली और सड़कों में
यूँ लावारिस है पड़ी?
राजनीति के फ्रेम में
क्या केवल दिखाने को
उसकी यह तस्वीर जड़ी।

याद करो
जब लोग आपदा से लड़ रहे थे
वे कर्म-फल पढ़ रहे थे
जब किसान सड़कों पर हैं
वे धर्म चर्चा पर व्यस्त है।
यह कौन सा खेल चल रहा है
क्या अब भी नहीं समझ रहे हैं?
खेल बहुत पुराना है
बस खिलाड़ी बदल गए हैं।
दर्शक भी बड़े अजीब हैं
मैच फिक्स है जानकर भी
ताली बजा रहे हैं।
याद रखो
मैच उनका है
दर्शक दीर्घा उनकी है
पर फीस तो आप चुका रहें हैं।

शिव कॉलोनी पियाना,
पी.ओ.डिग्री कॉलेज,
पिथौरागढ़, उत्तराखंड, 262502
मो.- 9411707470
E-mail : punetha.mahesh@gmail.com

साहित्यिक पत्रिका सम्मेलन

साहित्य पत्रिका सम्मेलन - (16-17 फरवरी 2019)

प्रस्तावना पत्र

कोलकाता में साहित्यिक पत्रिका सम्मेलन (2019) एक संकट के माहौल में ही नहीं, एक आशा के साथ भी शुरू हो रहा है। देश के विभिन्न कोने से जो लेखक-सम्पादक भारतीय भाषा परिषद में उपस्थित हैं वे एक बड़ा मन लेकर आए हैं। अचानक उपस्थित समस्याओं की वजह से कई व्यक्ति नहीं आ सके, पर उनकी भावनाएं हमारे साथ है। लेखकों-संपादकों का इतनी बड़ी संख्या में शामिल होना साहित्यिक पत्रिकाओं की उस दीर्घ परम्परा में हमारी अटूट आस्था का सबूत है जिसकी शुरुआत भारतेंदु हरिश्चन्द्र ने 'कविवचनसुधा' से की थी। महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा संपादित 'सरस्वती', निराला आदि के 'मतवाला', प्रेमचन्द के 'हंस' तथा कई अन्य महत्वपूर्ण पत्रिकाओं से होते हुए यह परंपरा लघु पत्रिकाओं के मुकाम पर पहुँची। इस महान परंपरा में लेखक और संपादक अभिन्न रहे हैं और मुनाफाखोरी कभी लक्ष्य नहीं रही। दरअसल पत्रिका निकालना एक तरह से घरफूंक 'लिटरेरी एक्टिविज्म' है जो आज तक जारी है। उसकी आज भी सार्थकता है।

निश्चय ही पहले से परिस्थितियां काफी बदली हैं। हम उदारता लोकतंत्र के युग से भय और घृणा पर आधारित ऐसी कट्टरवादी सत्ताओं के युग में आ गए हैं जब गंभीर बहस, विचारों के आदान-प्रदान, नए प्रश्न उठाने और साझा कार्यक्रम के लिए स्पेस सिकुड़ता जा रहा है। तथ्यों और बौद्धिक नवोन्मेष की जगह आवेग और रूढ़ियों की प्रधानता है। लोग उत्पादित सतही ज्ञान पर निर्भर है और अपने ही अनुभव से विच्छिन्न हैं। हालत यह है कि विविधता को फूट में बदलने की तैयारियाँ हैं। 'आत्मप्रचार-परनिंदा' का बोलबाला है जो भाषा पर बमबारी की तरह है। कहना न होगा कि एक काफी चुनौतीपूर्ण समय में यह सम्मेलन हो रहा है। हम सभी सबसे पहले यह चाहेंगे कि खुल कर आपस में मिलना-जुलना हो, दीवारें टूटे और रास्ते निकलें। हमारा विश्वास है कि हमारी साहित्यिक संस्कृति में एक-दूसरे पर आक्रमण धीमे होंगे और संवाद तीव्र होगा।

आज यहाँ वे आए हैं जो मेहनत से भारी आर्थिक नुकसान उठा कर साहित्यिक पत्रिकाएँ निकालते हैं, उनमें लिखते और सहयोग देते हैं। यह सम्मेलन सबसे पहले यह संदेश है कि मानवीय भावनाओं और विचारों को बचाने के लिए यदि साहित्य की जरूरत है तो साहित्य को बचाने के लिए साहित्यिक पत्रिकाओं की जरूरत है। साहित्यिक पत्रिकाओं के बिना साहित्य की कल्पना नहीं की जा सकती, विचारों की स्वतंत्रता की कल्पना नहीं की जा सकती।

यह विडंबनापूर्ण है कि साहित्यिक पत्रिकाएँ पढ़ने वाले लोग तेजी से फिल्म-टेलीविजन और मनोरंजन उद्योग के व्यापक जाल में फँसते गये हैं या मीडिया की निम्न, उत्तेजक और चटपटी चीजों में। सोशल मीडिया एक बड़ा अवसर है तो एक भारी समस्या भी है। सूचना के युग में ही ज्ञान तक पहुँच सबसे कम है, क्योंकि अज्ञानता-निर्माण की बड़ी-बड़ी फैक्ट्रियां खुली गई है। झूठ दिग्विजय पर है। इस वातावरण में खड़ा होकर हम यही कह सकते हैं कि मनोरंजन उद्योग और झूठ के कारखाने यदि हमारे दिमाग का अपहरण करते हैं तो साहित्यिक पत्रिकाएं हमारे दिमाग को आजाद करती है।

साहित्यिक पत्रिकाओं का समाज में बने रहना एक व्यापक सांस्कृतिक आंदोलन से जुड़ा मामला है। इनकी विविधता को, उत्पीड़न की बहुत-सी आवाजों को फूट नहीं मानना चाहिए। इन्हें शक्ति समझना चाहिए। इनके बीच खाइयो की नहीं, पुल की जरूरत है। इस दृष्टिकोण के आलावा, इस पर बहस हो सकती है कि क्या आज सांस्कृतिक जागरूकता के बिना राजनीतिक जागरूकता संभव है। इन चीजों पर भी सोचने की जरूरत महसूस हो करती है कि पत्रिकाएँ एक व्यापक साहित्यिक-सांस्कृतिक आंदोलन के रूप में रचनात्मकता को कैसे प्रोत्साहन दें, वे नई भविष्य-दृष्टियों के साथ आम असहमति का निर्माण कैसे करें और सबसे अहम बात यह है कि पढ़ने की संस्कृति का व्यापक ह्रास हुआ है तो पाठक की वापसी कैसे हो।

सम्मेलन

मुद्रित साहित्यिक पत्रिकाओं और ई-पत्रिकाओं में कोई अंतिर्वरोध नहीं है। लेकिन यह भ्रम दूर हो जाना चाहिए कि अब मुद्रित साहित्यिक पत्रिकाओं का युग बीत गया है और सोशल मीडिया या ई-पत्रिकाएँ उनका विकल्प है। हम जानते हैं कि कोकोकोला कभी पानी का विकल्प नहीं हो सकता।

इस दुनिया में अभी भी मानवता का कोई भविष्य है, तर्क का भविष्य है और सत्य का भविष्य है तो निश्चय ही साहित्य और साहित्यिक पत्रिकाओं का भी भविष्य है। यह भविष्य तभी खिलेगा जब रचनाकार इस सोच से बाहर आएंगे कि उनका काम सिर्फ लिखना है, पत्रिका निकालना-चलाना दूसरों का काम है। साहित्यिक पत्रिका सम्मेलन में इस पर चर्चा की जा सकती है कि विचारों में साझेदारी का क्या अर्थ है और साहित्य कर्म के एक जरूरी हिस्से 'पत्रिका-कर्म' में साझेदारी का क्या अर्थ है।

उपर्युक्त के अलावा विभिन्न नगरों में साहित्यिक पत्रिकाओं के विक्रेताओं को भी इस संवाद से जोड़ने की जरूरत महसूस हो सकती है, क्योंकि साहित्यिक पत्रिकाओं का वितरण एक बड़ी समस्या है। इसके अलावा यह भी कहना जरूरी लगता है कि बड़ी-बड़ी बातों से क्या होगा, यदि एक दिन हम जो लिखेंगे, उसे हमारे जवान बच्चे ही पढ़ने से इन्कार कर दें।

यह सम्मेलन तब हो रहा है जब साहित्यिक पत्रिकाओं के संपादकों की पुरानी पीढ़ी अपने आखिरी विकेट पर है, हालांकि नई पारी खेलने वाले सामने तैयार हैं। थोड़ी चिंता इस पर हो सकती है कि साहित्यिक पत्रिकाओं का वर्तमान परिदृश्य रचना, वितरण / संप्रेषण और पढ़ने की संस्कृति इन तीनों ही स्तर पर संतोषजनक नहीं है। अब नई-नई पत्रिकाओं निकालने का पहले-सा जुनून नहीं है या फिर आसानी से मामूली खर्च में ई-पत्रिकाएँ निकालने की तरफ उत्साह खिसकता जा रहा है। समस्याएँ यहाँ भी कम नहीं है। पाठकों की कमी यहाँ भी हैं। मुख्यत: लेखक ही ई-पत्रिकाओं की साइट पर ज्यादा घूमते हैं। यह एक भ्रम है कि ई-पत्रिकाओं के हजारों की संख्या में ग्लोबल पाठक होते हैं।

ई-पत्रिकाओं की लंबी रचनाओं को मोबाइल पर आनंद से पढ़ना भी एक समस्या है। इन सारी स्थितियों को देखते हुए ई-पत्रिकाओं की समस्याओं और संभावनाओं पर चर्चा होनी चाहिए और इस माध्यम का स्वागत किया जाना चाहिए। ई-पत्रिकाओं से बड़ी आय संभव है, यह भी एक मिथ है। निश्चय ही साहित्य की मुद्रित और ई-पत्रिकाओं - दोनों की कई साझी समस्याएँ हैं और ये एक ही नदी के दो किनारों की तरह है।

साहित्यिक पत्रिका सम्मेलन ऐतिहासिक सिद्ध हो सकता है, 'स्वायत्तता के साथ सहयात्रा' का हमलोगों का पुराना संकल्प फिर जी उठे, हमारा भीतरी अलगाव खत्म हो और मतभेद हो भी तो संवाद बना रहे। इसमें संदेह नहीं कि आज पाठकों के सामने मनोरंजन उद्योग की मजेदार चीजें बहुत ज्यादा है। सत्ताओं की एक से बढ़कर एक झूठ लीलाएँ है। हर तरफ प्रलोभन है। सिकंदर जब ग्रीक दार्शनिक डायोजिनिस के सामने पुरस्कार और धन-दौलत के साथ गया तो डायोजिनिस ने उसकी तरफ देख कर कहा, 'सामने से हट जाओ, धूप आने दो।'

आज जो कई महज दर्शक हैं, वे अच्छे पाठक बनने के लिए एक-एक कर यह कहना शुरू कर सकते हैं - 'सामने से हट जाओ, धूप आने दो।' यह हमारी आशा है, लेकिन इस आशा की नींव में अभी बहुत कोयले की जरूरत है। धन्यवाद।

-शंभुनाथ
सम्पादक, वागर्थ
भारतीय भाषा परिपद, कोलकाता

www.sadinama.in
इंटरनेट पर पत्रिका उपलब्ध है।

यहाँ

www.notnul.com
हमारा ई-मेल
sadinama2000@gmail.com